ISSN 2348-3857

संत कृपालु महाराज के भक्ति साहित्य में दैन्य भाव

Research Reinforcement
ISSN 2348-3857

माला खेमानी

शोधार्थी

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

शोध सारांश

प्रस्तुत शोध आलेख पंचम मूल जगद्गुरु की उपाधि से विभूषित, संत कृपालु महाराज के साहित्य पर आधारित है। संत कृपालु महाराज का जन्म सन् 1922 की शरद पूर्णिमा को उत्तर प्रदेश प्रान्त के मनगढ़ ग्राम में हुआ था। सन् 1957 में काशी विद्वत् परिशत् द्वारा उनके गूढ़ वैदिक ज्ञान के आधार पर मूल जगद्गुरु ही नहीं अपितु जगद्गुरूत्तम की उपाधि प्रदान की गई। उन्होंने समस्त विरोधाभासी तत्वों का वैदिक प्रमाणों से समन्वय करते हुए ईश्वर प्राप्ति हेतु भक्ति मार्ग की प्रतिस्थापना की है। प्रस्तुत शोध आलेख में संत कृपालु महाराज द्वारा विरचित प्रेमरस सिद्धान्त, प्रेम रस मदिरा, युगल शतक, युगल रस, श्यामा श्याम गीत, राधा गोविन्द गीत, भक्ति शतक एवं साधक सावधानी, भक्ति की आधाराशिला प्रवचन साहित्य को (उपकरण) के रूप में प्रयुक्त करते हुए विषय वस्तु विश्लेषण पद्धति को आधार बनाकर अध्ययन किया गया है। निष्कर्ष रूप में हिन्दी साहित्य की भक्ति कालीन परम्परा में संत कृपालु महाराज का साहित्य एक नवीन हीरक कड़ी के रूप में दृष्टिगत है। उनका साहित्य न केवल हिन्दी साहित्य अपितु विश्व साहित्य में उच्च स्तरीय है। प्रस्तुत शोध आलेख उनके समस्त भक्ति साहित्य में अन्तर्निहित दैन्य भाव को प्रस्तुत करता है।

संकेताक्षर : *दैन्य भाव, दिव्य आनन्द, कैंकर्य भाव*

संत कृपालु महाराज द्वारा प्रणीत भक्ति तत्व में दैन्य भावना भक्ति की आधारशिला है। संत कृपालु महाराज जीव के परम चरम लक्ष्य, दिव्य आनन्द की प्राप्ति हेतु एक मात्र भक्ति मार्ग को ही समर्थ मानते हैं और यह भक्ति बिना दैन्य भाव के विकसित नहीं हो सकती। इसको भी वैदिक तर्क सहित उन्होंने सिद्ध किया कि जीव सदा ब्रह्म का दास है तथा अनादिकाल से जड़ माया के फेरे में उलझा हुआ अनन्त पाप-पुण्यों से ग्रसित है तथा अपने अंशी के दासत्व से दूर है। इस ब्रह्म के अंश को शान्ति एवं आनन्द की प्राप्ति तब ही हो सकती है जब वह स्वयं को पतित महसूस करते हुए ईश्वर से मिलन एवं सेवा, प्रेम, दर्शन की प्रार्थना करे। बिना दैन्य भाव के उसे परम ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती। दैन्य भाव जीवात्मा के भीतर समाहित समस्त प्रकार के अहंकार का मर्दन करता है तथा जीव को परम शुद्ध बना देता है। दैन्य भाव जीवात्मा के अन्त:करण को पवित्र बनाता है। दैन्य भाव से तात्पर्य तृण से बढ़कर दीन भाव, वृक्ष से बढ़कर सहिष्णु भाव, सबको सम्मान देना, स्वयं सम्मान न चाहने का भाव है। अर्थात् जीव स्वयं को मान अपमान से शून्य कर दे तथा सभी में एक मात्र भगवान की उपस्थिति का भाव रखे। भक्त वही है जो सब में भगवान की भावना रखे। भक्त भगवान के सम्मुख सदा दीनता का भाव रखे क्योंकि दैन्य भाव ही भक्ति की आधारशिला है। भक्ति की इस आधारशिला को संत कृपालु महाराज ने अपने साहित्य में भली प्रकार से स्पष्ट किया है। अपने प्रवचन साहित्य में अनेक बार उन्होंने दैन्य भाव के समस्त विज्ञान को स्पष्ट किया जैसे-

भक्ति मार्गावलंबी को सर्वप्रथम उपर्युक्त तीन शर्तों को पूरा करना होगा। 1. तृण से बढ़कर दीन भाव रहे। 2. वृक्ष से बढ़कर सहिष्णु भाव रहे। 3. सबको सम्मान दे, स्वयं सम्मान न चाहे। हम लोग स्वयं को अच्छा कहलवाने का प्रयत्न करते हैं, यह महान पतनकारक है। हमको अच्छा बनने का प्रयत्न करना चाहिए। जैसे यदि कोई हमारी बुराई करता है तो हम फील करते हैं, उस व्यक्ति पर क्रोध करते हैं, उससे शत्रुता रखते हैं, शत्रु भाव से उसी का चिन्तन करते हैं। यह अपनी महती हानि करते हैं। जिस मन में शुद्ध हरि गुरु को लाने का अभ्यास करना है, उसमें उस पतित को बार-बार स्थान देते हैं, इससे अन्त:करण और अशुद्ध होता है। देखो! एक सिद्धान्त सदा समझ लो, जब तक हमको भगवद् प्राप्ति

नहीं हो जाती तब तक हम पर माया का अधिकार रहेगा। जब तक माया का अधिकार रहेगा, तब तक काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि सब दोष रहेंगे। इसके अतिरिक्त पिछले अनन्त जन्मों के पाप भी रहेंगे क्योंकि भगवत्प्राप्ति पर ही समस्त पाप भस्म होते हैं। यथा-

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि या शुचः।।

गीता 18.66

अब सोचों-यदि कोई मुझे कामी, क्रोधी, लोभी, पतित, नीच, अनाचारी, दुराचारी, पापाचारी कहता है तो गलत क्या है- सच को सहर्ष मानकर उस दोष को ठीक करना चाहिए।

इसी क्रम में आगे उन्होंने मान अपमान के भाव को स्पष्ट करते हुए कहा कि- अहंकार से बचना और अपमान को फील न करना साधना की आधारशिला है। यह बात साधना करने वाले जीवों के लिए श्री गणेश है। पाँचों इन्द्रियों को जीतना और किसी से अनुराग न करना फिर भी संभव है किन्तु मान-अपमान की फीलिंग जब तक नहीं मिटती तब तक आप में अहंकार सदा रहेगा एवं बढ़ता ही जाएगा। संकीर्तन में आपके आँसू नहीं आते, यह अहंकार के कारण है और अगर आँसू आते हैं और साधक सोचता है, वाह! हमें तो आँसू आते हैं- यह सूक्ष्म अहंकार है। इसका प्रकट में आना कठिन है। इस अहंकार को सिर्फ महापुरुष ही बतला सकता है और इसी अहंकार को ठीक करने के लिए ही संत की विशेष आवश्यकता होती है। हम अपनी मायिक बुद्धि से यह निश्चय नहीं कर सकते कि हम अहंकार कर रहे हैं। इसलिए मान अपमान पर विचार न करते हुए हमें यह सोचना है कि हम तृण से बढ़कर दीन किस प्रकार बनें? हम दीन नहीं हैं लेकिन लोकरंजन के लिए यह भावना रहती है कि लोग हमें दीन समझें-यह भी अहंकार है।[1] इस प्रकार भक्त मन में सदा दीन भाव रखकर आँसू बहाकर जब अपने शरण्य की आराधना करता है तब उसे जल्दी अपने लक्ष्य की प्राप्ति होती है। साधना में आँसू न आना, हमारे मन में अहंकार एवं दैन्य भाव के अभाव का सूचक है। भक्त बनना है तो दीनता की पराकाष्ठा पर पहुँचना होगा। कोई किसी भी प्रकार का अपमान करे किन्तु मन में उसकी चुभन न हो यही दैन्य भाव है। भक्ति में इस दैन्य भाव को उन्होंने अपने लिखित साहित्य में भी अभिव्यक्ति किया है जैसे 'भक्ति शतक' ग्रंथ का निम्न दोहा प्रस्तुत है-

सब साधन सम्पन्न कहँ, पूछत सब संसार।
साधन हीन प्रपन्न कहँ, पूछत नन्द कुमार।।[2]

जिसे अपने समस्त साधनों का बल है अर्थात् धन बल, विद्या बल, सौन्दर्य बल, बुद्धि बल आदि से सम्पन्न व्यक्ति को तो सारा संसार ही आदर देता है किन्तु जो साधनहीन है, जिसके पास किसी प्रकार का बल नहीं है, जो निराधार होकर ईश्वर की शरण में जाता है, जो संसार के किसी बल का अहंकार नहीं करता, जो सदा दीन भाव से शरण्य की शरण में रहता है ऐसे दीन भक्त की संभाल तो स्वयं कृष्ण भगवान करते हैं। संत कृपालु महाराज भक्ति में दीन भाव को इतना महत्त्वपूर्ण मानते हैं कि 'प्रेम रस मदिरा' ग्रंथ में एक पूरा अध्याय ही दैन्य माधुरी के रूप में निरुपित किया है। इस ग्रंथ के दैन्य माधुरी अध्याय में कुल 105 पदों की रचना की गई है। यथा -

कहौं का, तुम सों नंद कुमार।
वासों कहत फबत जो उर की, नहिं जानत सरकार।
खरे खरे को तो संसारहुँ, सबै निबाहन हार।
पै मो सम खोटे को तो प्रभु, इक तुम्हरो दरबार।
यद्यपि दयायाचनाहूँ को, नहिं हमरो अधिकार।
तदपि 'कृपालु' कहौं पुनि कासों, को पतितन रखवार।[3]

अर्थात् एक भक्त भगवान से कहता है, हे नंदकुमार! तुमसे कुछ कहते शोभा नहीं देता। कहना तो उसी से शोभनीय है जो स्रदय की न जानता हो। हे श्यामसुन्दर! अच्छे-अच्छे लोगों को तो संसार में भी सब निबाह लेते हैं, किन्तु मुझ सरीखे खोटे को तो एक मात्र तुम्हारे ही दरबार का सहारा है। यद्यपि मुझे क्षमा मांगने का भी अधिकार नहीं है, क्योंकि क्षमा मांगने का अभिप्राय यह होता है कि पुनः अपराध न करे। 'कृपालु' कहते हैं तथापि फिर और किससे कहूँ, पतितों को अपनाने वाला और कौन है। इसी प्रकार भक्ति में दैन्य भाव को 'राधा गोविंद गीत' ग्रंथ के निम्न दोहों में भी अभिव्यक्त किया है।

हरि मन लाए नहिं गोविंद राधे। केहि बल पै इतराय बता दे।
निज सब बल तजु गोविंद राधे। निर्बल बनि बल हरि को बना दे।
यौवन दो दिन गोविंद राधे। आयु भी है चार दिन मद क्यों बता दे।
बल नहिं काल सम गोविंद राधे। पुनि बल का अभिमान क्यों बता दे।[4]

अर्थात् उक्त दोहों में संत कृपालु महाराज ने भक्त को दीन भाव हेतु प्रेरित करते हुए कहा है कि हे जीवात्मा। तुम हरि में मन नहीं लगाते। तुम्हें किस बात का अहंकार है? संत कृपालु महाराज कहते हैं कि अपने समस्त साधन बल को त्याग कर, अपना बल, हरि का बल बना दो। अर्थात् ईश्वरीय प्रेम एवं कृपा को ही अपना आधार बनाओ। इस संसार में जितने भी मायिक बल हैं जैसे तन, यौवन, धन आदि का बल, ये सारे बल तो नाशवान हैं। एक दिन

ये सभी नष्ट हो जाएंगे लेकिन हरि का बल सदा हमारे साथ रहता है। संत कृपालु महाराज कहते हैं कि ये निश्चित है कि जो भी इस संसार में आया है वह एक न एक दिन अवश्य जाएगा, तो फिर क्यों इस संसार में हम धन का संचय करते हैं। बड़े-बड़े धुरन्धर इस संसार में आये और खाली हाथ चले गए। धन, आयु, यौवन, सौन्दर्य आदि सभी कुछ क्षणिक और नाशवान हैं। जिस दिन काल अपना बल दिखायेगा तो सारे बल शून्य हो जाएंगे। अत: दीन भाव से हरि में मन लगाकर भक्ति करने से जल्दी ही लक्ष्य की प्राप्ति होगी। भक्ति में दैन्य भाव को संत कृपालु महाराज ने 'युगल रस' के छन्दों में भी अभिव्यक्त किया है जैसे निम्न छन्द प्रस्तुत है-

अपनी ओर लखु राधे, राधे मेरी राधे।
बिनु कारण करुणा कर राधे,
अस कह रसिकन राधे, राधे मेरी राधे।
तुम ही मम जानत हौं राधे,
मानत नहिं मन राधे, राधे मेरी राधे।
आपुन दोष दुरावत राधे,
दोष देत तोहिं राधे, राधे मेरी राधे।
पतित 'कृपालु' पतित ते राधे,
पतित पावनी राधे, राधे मेरी राधे ।[5]

अर्थात् संत कृपालु महाराज राधा रानी से दैन्य भाव से विनय करते हैं कि हे राधे! आप मेरी ओर न देखें क्योंकि मैं तो अनन्त जन्मों का पापी हूँ, मेरे पास आपको रिझाने के लिए कोई गुण नहीं है। आप तो अपनी ओर देखो। अर्थात् आपका स्वभाव अकारण करुणा का है। अत: आप मुझ जैसे गुणहीन पर कृपापूर्वक ध्यान दीजिए। मैं तो ऐसा अपराधी हूँ कि ये जानते हुए कि मेरी संबंधी तो केवल एक आप हो किन्तु फिर भी मेरा मन निरन्तर इस बात को नहीं मानता। मेरा मन अपने दोषों की ओर नहीं देखता बल्कि भगवान को ही दोष देता है कि आपने मेरा उद्धार नहीं किया। किंतु फिर भी कृपालु महाराज को यह भरोसा है कि आप पतित पावनी अर्थात् पापियों का पाप धोने वाली हो और मेरे जैसे पापी का भी कल्याण आप ही करोगी। इसी प्रकार 'श्यामा श्याम गीत' ग्रंथ में भी संत कृपालु महाराज ने भक्ति में दैन्य भाव को अभिव्यक्त किया है-

जीभ घिस गई गाते गाते तव नामा।
अब या तो प्रेम दे या ले ले प्राण श्यामा।
माँगता रहूँगा रो रो प्रेम निष्कामा।
बुरा नहीं मानूँगा तू दे या ना दे श्यामा।[6]

अर्थात् संत कृपालु महाराज बड़े दैन्य भाव से राधा जी से अनुनय विनय कर रहे हैं कि हे राधा रानी! आपको बुलाते बुलाते अब मेरी सामर्थ्य खत्म हो गई है। अब या तो आप अपना प्रेम मुझे दीजिए या फिर मेरे प्राणों का हरण कर लो क्योंकि अब आपका वियोग मुझसे नहीं सहा जा रहा। भक्ति में इसी दैन्य भाव को संत कृपालु महाराज ने 'युगल शतक' ग्रंथ के निम्न छन्द में भी अभिव्यक्त किया है-

रो रो के पुकारूँ तोहिं कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
मेरो कोइ साधन बल नहिं कान्हा,
तू ही मम बल कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
तू तो अकिंचन का ही बस कान्हा,
मैं भी तो अकिंचन कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
लो अपनाय कृपालुहिं कान्हा,
तुम 'कृपालु' अति कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।[7]

अर्थात् संत कृपालु महाराज कहते हैं कि हे कृष्ण! मैं तुम्हें रो रो के पुकार रहा हूँ। आप मुझे अपना दर्शन दे दीजिए। मेरे पास इन आँसुओं के अलावा और कोई साधन बल नहीं है जिससे आपको रिझा सकूँ। मेरा तो एक बल मात्र आप ही हो। सुना है आप तो साधनहीन अकिंचन भक्त के वस में रहते हैं तो मेरा आपसे आग्रह है कि मैं भी तो अकिंचन हूँ। मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप इस अकिंचन कृपालु को अपना लो क्योंकि तुम तो सदा से ही अति कृपालु हो। इस प्रकार संत कृपालु महाराज का समस्त साहित्य भक्ति में दैन्य भाव से परिपूरित है। उनके अनुसार बिना दीनता के भगवान को पाया नहीं जा सकता क्योंकि जीव का वास्तविक स्वरूप किंकर है। ईश्वर के प्रति सदा कैंकर्य भाव ही जीव को तुरन्त लक्ष्य की ओर अग्रसित करता है। भक्त संसार के समस्त जड़, चेतन पदार्थों में भी सदा अपने इष्ट के ही दर्शन करता है। संसार में इसी कारण वह सभी के साथ दीनता, नम्रता, अहंकार शून्यता का व्यवहार करता है। जैसा कि प्रवचन साहित्य की निम्न पंक्तियों में स्पष्ट किया है- भक्त बनना है तो सबमें भगवान को देखो किसी का अपमान न करो। कड़क न बोलो। उसको दु:खी न करो 'परपीड़ा सम नहिं अधमाई'। सबसे बड़ा पाप कहा गया है दूसरे को दुखी करना। कम बोलो, मीठा बोलो और सहनशीलता बढ़ाओ, नम्रता बढ़ाओ, दीनता बढ़ाओ। इससे साधना जो किया है या जो कर रहे हो वो पूँजी बनी रहेगी।[8]

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि संत कृपालु महाराज के समस्त भक्ति साहित्य में दैन्य भाव अन्तर्निहित है। संत कृपालु

महाराज विनम्रता और दीनता को भक्ति की आधारशिला मानते है। बिना दैन्य भाव के अन्त:करण शुद्ध नहीं हो सकता और बिना अन्त:करण शुद्ध हुए परम तत्व अर्थात् आनन्द की प्राप्ति के लक्ष्य को पाना असंभव है। दैन्य भाव ही भक्त को भगवान के नजदीक ले जाता है। दीनता के भाव से भक्त अहंकारादि दुर्गुणों से निवृत्त होकर परम शुद्ध रूप में अपने सनातन स्वरूप को प्राप्त करते हुए अनन्तकाल तक अपने आराध्य का साहचर्य प्राप्त करता है।

संदर्भ सूची

1. त्रिपाठी, राम कृपालु, भक्ति की आधारशिला, राधा गोविन्द समिति गोलोक धाम, नई दिल्ली, 2009, प्रवचन पृष्ठ संख्या 23-24
2. त्रिपाठी, राम कृपालु, भक्ति शतक, राधा गोविन्द समिति, गोलोक धाम, नई दिल्ली 2000, दोहा संख्या - 39
3. त्रिपाठी, राम कृपालु, प्रेम रस मदिरा, साधना भवन ट्रस्ट मनगढ़, 2001, दैन्य माधुरी पद-29
4. त्रिपाठी, राम कृपालु, राधा गोविन्द गीत, राधा गोविन्द समिति, गोलोक धाम, नई दिल्ली,2000, दोहा संख्या-107, 908-919-920
5. त्रिपाठी, राम कृपालु, युगल रस, राधा गोविन्द समिति, गोलोक धाम नई दिल्ली, 2005, पद संख्या-83
6. त्रिपाठी, राम कृपालु, श्यामा श्याम गीत, राधा गोविन्द समिति गोलोक धाम, नई दिल्ली, 2002, दोहा संख्या-138-139
7. त्रिपाठी, राम कृपालु, युगल शतक, राधा गोविन्द समिति, गोलोक धाम, 2005, पद संख्या-20
8. त्रिपाठी, राम कृपालु, साधक सावधानी, साधना भवन ट्रस्ट, मनगढ़, 2000, प्रवचन-20/11/2000, पृ.सं.-05